जनसत्ता

हादसे की पटरी

सीमांचल एक्सप्रेस हादसे से एक बार फिर जाहिर हुआ है कि रेल सुरक्षा को लेकर समुचित उपाय जुटाने में रेल विभाग लगातार विफल साबित हो रहा है। रविवार तड़के लगभग चार बजे सीमांचल एक्सप्रेस के ग्यारह डिब्बे पटरी से उतर गए। इस दुर्घटना में सात लोगों की मौत हो गई और करीब चौबीस लोग गंभीर रूप से घायल हैं। दुर्घटना की वजहों का अभी ठीक-ठीक पता नहीं चल पाया है। मगर शुरुआती जांच में पता चला है कि रेल की पटरी टूटने या पहले से टूटी होने की वजह से यह हादसा हुआ। समझना मुश्किल है कि पटरियों की निगरानी करने वाले दस्ते को ऐसी किसी गड़बड़ी की जानकारी कैसे नहीं मिली। निगरानी दस्ता नियमित पटरियों की जांच करता है। ऐसे में अगर रेल की कोई पटरी टूटी होती या फिर उसमें कहीं कोई कमजोरी होती, तो उसे दुरुस्त करना उसकी जिम्मेदारी थी। कई बार तेज रफ्तार गाड़ियां गुजरने की वजह से पटरियों के नीचे की पट्टियों या फिर उन्हें जोड़ने वाले पुर्जों में ढीलापन आ जाता है। अगर समय रहते उसे दुरुस्त न किया जाए, तो वह हादसे की वजह बनता है। अगर पटरियों में गड़बड़ी की वजह से यह हादसा हुआ, तो निस्संदेह यह निगरानी दस्ते की लापरवाही का नतीजा था।

यह इस तरह का पहला हादसा नहीं है। हर साल ऐसी बड़ी दुर्घटनाएं हो जाती हैं। पिछले दस महीनों में यह पांचवां बड़ा हादसा है। इसके अलावा छोटे-मोटे हादसे होते रहते हैं, जिसमें मानव रहित फाटकों पर गाड़ियों से वाहनों और लोगों के टकराने से मौतें हो जाती हैं। ऐसे हादसों पर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता, जिनमें जान-माल का कोई नुकसान नहीं होता। पिछले चार सालों में रेल दुर्घटनाओं की तादाद सबसे अधिक रही है। पर फिर भी रेल महकमा इस पर काबू पाने का कोई ठोस उपाय जुटाने में विफल साबित हुआ है। ज्यादातर रेल दुर्घटनाओं के पीछे बड़ी वजह रेलकर्मियों की लापरवाही रही है। इन दुर्घटनाओं के पीछे रेल विभाग का एक तर्क यह भी रहा है कि चूंकि रेल लाइनों के सुधार का काम बहुत तेजी से हो रहा है और उसी पटरी पर से ट्रेनों को भी गुजारना होता है, इसलिए कभी-कभार ऐसे हादसे हो जाते हैं। यह तर्क विचित्र है। यों ताजा रेल बजट में दावा किया गया है कि ज्यादातर रेल लाइनों का सुधार कार्य पूरा हो चुका है, बिना फाटक की क्रासिंग अब न के बराबर रह गई हैं, रेल लाइनों के विस्तार का काम तेजी से हो रहा है। रेल सुरक्षा संबंधी उपाय काफी हद तक जुटाए जा चुके हैं। पर हैरानी की बात है कि यह हादसा कैसे हो गया।

रेल सेवाओं को विश्वस्तरीय मानकों के अनुरूप ढालने और तेज रफ्तार गाड़ियां चलाने के दावे तो खूब किए जाते हैं। बुलेट ट्रेन चलाने का भी प्रस्ताव है। पर जब रेल पटरियों को ही विश्वसनीय नहीं बनाया जा सका है, तो उन पर तेज रफ्तार गाड़ियां चलाने का सपना भला कैसे पूरा किया जा सकेगा। तमाम क्षेत्रों में, यहां तक कि टिकट बुकिंग के मामले में रेलवे भी कंप्यूटरीकृत प्रणाली अपना चुका है, पर दुर्घटना पर काबू पाने के मामले में अभी तक ऐसी प्रणाली को नहीं अपनाया जा सका है। जब तक रेल संचालन की पुरानी पद्धति छोड़ कर नई तकनीक का उपयोग नहीं होता और पटरियों को पुख्ता बनाने पर जोर नहीं दिया जाता, ऐसे हादसों पर काबू पाना मुश्किल बना रहेगा।

कबाड़ का कारोबार

अदालत की सख्ती के चलते करीब पंद्रह साल पहले प्रदूषण फैलाने वाले और अवैध रूप से चल रहे कारखानों को दिल्ली से बाहर बसाने का अभियान चला था। इसके लिए हरियाणा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में औद्योगिक क्षेत्र विकसित किए गए थे। दिल्ली से उजड़ कर जाने वाली औद्योगिक इकाइयों को इन इलाकों में रियायती दर पर भूखंड आबंटित किए गए थे। मगर बहुत सारे कारखाने चोरी-छिपे, नियम-कायदों को तोड़-मरोड़ कर व्याख्यायित करते हुए या प्रशासन की मिलीभगत से दिल्ली के भीतर बने रहे। ज्यादातर कल-कारखाने दिल्ली के शहरी क्षेत्र में आ गए गांवों या लाल डोरा के भीतर चलते हैं, क्योंकि उनमें शहरी क्षेत्र के नियम-कायदे लागू नहीं होते। उन्हें भवन निर्माण आदि के मामले में छूट मिली हुई है। हालांकि इसका अर्थ यह नहीं कि इन क्षेत्रों में प्रदूषण फैलाने वाली इकाइयां लगाने या ऐसे कारोबार करने की छूट है। कबाड़ का कारोबार करने वाले भी इसी तरह छूट लेते रहे हैं। इसके मद्देनजर राष्ट्रीय हरित अधिकरण यानी एनजीटी ने दिल्ली सरकार को भारी वाहनों को काट कर कबाड़ निकालने वालों के खिलाफ कदम उठाने का निर्देश दिया था, पर वह इस मामले में विफल रही। इस पर एनजीटी ने दिल्ली सरकार को फटकार लगाते हुए कहा है कि सरकार पांच करोड़ रुपए जमानत राशि जमा कराए और गारंटी दे कि वह एक महीने के भीतर इस काम को पूरा कर लेगी।

भारी वाहनों को काट कर कबाड़ निकालने का कारोबार शहर के कुछ इलाकों में बड़े पैमाने पर होता है। उनमें मायापुरी भी एक है। इन इलाकों में रिहाइशी कॉलोनियां हैं। इस तरह कबाड़ निकालने की प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर प्रदूषण फैलता है, जो वहां रहने वाले लोगों की सेहत पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। मगर समझना मुश्किल है कि इस तरह के कारोबार को हटाने में दिल्ली सरकार को क्या परेशानी हो सकती है। इसमें न तो भारी मशीनों का उपयोग होता है और न इस कारोबार को उत्पादन का कोई भारी नुकसान उठाना पड़ता है। बस इन्हें एक जगह से दूसरी जगह विस्थापित करने की प्रक्रिया पूरी करनी होती है। फिर जब वे अवैध रूप से चल रहे हैं, तो उन्हें कहीं और जमीन मुहैया कराने की औपचारिकता भी नहीं निभानी होती। मगर सरकार ऐसे लोगों को नहीं हटा सकती, तो अंदाजा लगाया जा सकता है कि अवैध रूप से चल रहे चप्पल-जूते के कारखानों, प्लास्टिक-रबड़ और इस्पात से बनने वाली वस्तुओं के कारखानों आदि पर नकेल कसने में कहां तक सफल हो सकती है।

दिल्ली के भीतर ऐसे अवैध रूप से चल रहे कारखानों में हर साल कोई न कोई बड़ा हादसा हो जाता है, जिसमें मजदूरों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। तब सरकार कमर कसती है कि वह इन कारखानों पर नकेल कसेगी। मगर फिर से वही प्रशासनिक शिथिलता नजर आने लगती है। दिल्ली में प्रदूषण का स्तर जानलेवा स्तर तक पहुंच चुका है। इससे पार पाने के लिए दिल्ली सरकार ने कई उपाय आजमाए, पर वे हवाई ही साबित हुए। अवैध रूप से चल रहे कारखानों को हटाने के निर्देश कई बार दिए जा चुके हैं। उनसे निकलने वाले जहरीले पानी और धुएं की वजह से किस कदर यमुना का पानी और शहर की हवा प्रदूषित हो रही है, अनेक अध्ययनों से जाहिर हो चुका है। पर हैरानी की बात है कि दिल्ली सरकार प्रदूषण फैलाने वाली इकाइयों के प्रति इस तरह नरम रवैया क्यों अख्तियार किए हुई है।

कल्पमेधा

अपने मतलब के लिए शैतान भी धर्मशास्त्र की दुहाई दे सकता है।
- शेक्सपियर

चुनौतियों के बीच दिव्यांगों का संघर्ष

देवाशीष उपाध्याय

दिव्यांगों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण और उपेक्षा के कारण सामाजिक चुनौतियां जटिल हो जाती हैं। ऐसे में दिव्यांगों का सामाजिक रूप से आत्मनिर्भर और स्वावलंबी होना आवश्यक है। इसलिए उन्हें सामान्य शिक्षा के स्थान पर विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है।

देश की आबादी का लगभग तीन प्रतिशत हिस्सा शारीरिक या मानसिक निःशक्तता और सामाजिक रवैये के कारण समाज की मुख्यधारा के साथ कदमताल करने में खुद को कमतर महसूस करता है। किसी प्राकृतिक या आनुवंशिक कारण, असंतुलन, असाध्य बीमारी, दुर्घटनावश शारीरिक-मानसिक रूप से असामान्य व्यक्ति को दिव्यांग कहा जाता है। ऐसे लोगों को जीवन निर्वहन में कदम-कदम पर कठिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जबकि ये लोग सामान्य लोगों की तरह बहुमूल्य मानवीय संपदा हैं।

यह तथ्य है कि अस्सी प्रतिशत दिव्यांग गरीब परिवार से संबंधित होते हैं, जिसके कारण उनके लिए मूलभूत आवश्यकताओं, यानी रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति कर पाना भी चुनौतीपूर्ण होता है। सामाजिक रवैये के कारण उन्हें कई बार उपेक्षा, उपहास और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है, जिससे वे हीन भावना से ग्रस्त हो जाते हैं। सामाजिक रूढ़ियों, प्रथाओं, मान्यताओं और समाज में जागरूकता के अभाव के कारण दिव्यागों के प्रति अन्याय होता रहा है, जिसके कारण ये लोग दोयम दर्जे की जिंदगी व्यतीत करने को मजबूर हैं।

यों भी संविधान द्वारा सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के विधि के समक्ष समानता और समान अवसर की गारंटी दी गई है। लोककल्याणकारी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार समाज के निशक्त, वंचित और उपेक्षित वर्ग के लिए जनकल्याणकारी योजनाओं का संचालन करती है। उनके विकास और सामाजिक सुरक्षा के लिए केंद्र सरकार ने 1995 में 'विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार, सुरक्षा तथा पूर्ण भागीदारी) अधिनियम' बनाया। इसके तहत दिव्यागों के सम्मानपूर्वक जीवन निर्वहन, शिक्षा, रोजगार, चिकित्सा और अधिकार आधारित समाज निर्माण की दिशा में प्रयास किया जा रहा है।

बढ़ती जनसंख्या, घटते प्राकृतिक संसाधनों के कारण मनुष्य के बीच संसाधनों की प्राप्ति के लिए कठिन प्रतिस्पर्धा का दौर चल रहा है। सामाजिक असमानता, ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, भौतिक संसाधनों और चिकित्सीय सुविधाओं के अभाव के कारण दिव्यांगों को पर्याप्त सुविधाएं नहीं मिल पाती हैं, जिसके कारण वे समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित होने की बजाय और पिछड़ते जा रहे हैं। इन्हें शिक्षा, रोजगार और चिकित्सा के लिए चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। एक अनुमान के मुताबिक मूलभूत आवश्यकताओं यानी रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति के अभाव के कारण लगभग पैंतीस फीसदी दिव्यांग बीस वर्ष की आयु भी पूर्ण नहीं कर पाते हैं। जबकि लगभग चालीस प्रतिशत दिव्यांगों को आधुनिक चिकित्सीय सुविधा और वैज्ञानिक तकनीकी का उपयोग कर विकास की मुख्यधारा में शामिल किया जा सकता है।

दिव्यांगों को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए शैक्षिक संस्थानों और सरकारी नौकरियों में चार प्रतिशत सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया है। इसके अतिरिक्त दिव्यांगता के सात के बजाय इक्कीस वर्ग तय किए गए हैं। दृष्टिहीनता, कम नजर आना, सुनने में असमर्थता, मंदबुद्धिता और शरीर के किसी अंग के काम न करने या न होने के अतिरिक्त मस्कुलर डिस्ट्राफी, क्रोनिक न्यूरोलॉजिकल सेरेब्रल पॉल्सी, हीमोफीलिया, मल्टिपल स्कलेरोसिस, ऑटिज्म, एसिड अटैक, पार्किन्सन रोग और थैलेसीमिया को भी दिव्यांगता की श्रेणी में रखा गया है। आरक्षण और अन्य सरकारी योजनाओं का लाभ उन दिव्यांग व्यक्तियों को मिलता है, जिनके सामान्य कामकाज इन रोगों या अक्षमता के कारण चालीस प्रतिशत तक प्रभावित होता है। अगर कोई व्यक्ति किसी दिव्यांग के साथ भेदभाव, तिरस्कार या उपेक्षा करे तो कानूनन उसे छह महीने से लेकर दो साल तक की सजा और दस हजार रुपए से लेकर पांच लाख रुपए तक का जुर्माना हो सकता है। सार्वजनिक स्थलों और भवनों में दिव्यांगों के आसानी से प्रवेश के लिए रैम्प और सार्वजनिक परिवहन में भी सहायक उपकरणों और संसाधनों का प्रबंध करना आवश्यक है।

दिव्यांगों के कौशल, रचनात्मक पोषण जीवन में सुगमता के लिए सरकार शिक्षा और रोजगार का विशेष प्रावधान किया है। शारीरिक अक्षमता के प्रभावों को कम करने के लिए उच्च तकनीकी आधारित सहायक उपकरण और चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए सरकार प्रयासरत है। दिव्यांग बच्चों के लिए 6-18 वर्ष की आयु तक मुफ्त शिक्षा के अधिकार की व्यवस्था की गई है। समुचित टीकाकरण, फीजियोथेरेपी, ऑडियोलॉजी, स्पीच थिरैपी, क्लिनिकल मनोविज्ञान, व्यावसायिक चिकित्सा, विशेष शिक्षा, शल्य क्रिया से सुधार और उपचार, दृष्टि मूल्यांकन, दृष्टि संवर्धन और आनुवंशिक विज्ञान में किए गए अद्यतन शोधों का उपयोग कर जन्मजात विकलांगता और मानसिक अपंगता के प्रभाव को कम किया जा सकता है। इसी प्रकार आकस्मिक दुर्घटना में घायलों का समय से वैज्ञानिक तकनीकी द्वारा उपचार कर संभावित विकलांगता के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

सहायक यंत्र और उपकरण दिव्यांगता के प्रभाव को कम कर शारीरिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पुनर्वास

में सहायक होते हैं। दिव्यांगों को प्रति वर्ष राष्ट्रीय संस्थान, राज्य सरकारें, जिला विकलांगता पुनर्वास केंद्र और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा प्रोस्थेसिस और ऑर्थोसिस, ट्राईसाइकिल, व्हील चेयर, सर्जिकल फुट वियर और दैनिक जीवन के कार्यकलापों के लिए सहायक यंत्र, सीखने वाले उपकरण (ब्रेल राइटिंग उपकरण, डिक्टाफोन, सीडी प्लेयर, टेप रिकार्डर) कम दृष्टि के सहायक यंत्रों सहित कई यंत्र मुहैया कराए जाते हैं।

लेकिन इन सबके बावजूद दिव्यांगों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण और उपेक्षा के कारण सामाजिक चुनौतियां जटिल हो जाती हैं। ऐसे में दिव्यांगों का सामाजिक रूप से आत्मनिर्भर और स्वावलंबी होना आवश्यक है। इसलिए उन्हें सामान्य शिक्षा के स्थान पर विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। संविधान के भाग-तीन में मूल अधिकार के अनुच्छेद 21 (क) में शिक्षा को मूल अधिकार घोषित किया गया है। निःशक्त व्यक्ति अधिनियम 1995 की धारा 26 के अंतर्गत 18 वर्ष की आयु तक के समस्त दिव्यांगो को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई है। मगर विडंबना है कि आज भी लगभग 60-70 प्रतिशत दिव्यांग निरक्षर हैं। सरकार दिव्यांगों की शिक्षा के लिए सामान्य विद्यालयों में विशिष्ट शिक्षा के साथ ही विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना कर रही है और उन्हें समावेशी शिक्षा प्रणाली द्वारा सामान्य शिक्षा पद्धति की मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया जा रहा है।

दिव्यांगों को सामाजिक सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए आत्मनिर्भर होना आवश्यक है। सरकार द्वारा दिव्यांगों की सरकारी सेवाओं में हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए विशेष सुविधाएं और अवसर दिए जा रहे हैं। दिव्यांगों के आर्थिक पुनर्वास, स्वरोजगार और निजी क्षेत्र में भी रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए कौशल विकास प्रशिक्षण दिए जा रहे हैं। दिव्यांग व्यक्तियों वाले उद्यमों के उत्पाद और सेवाओं को प्राथमिकता देने के लिए कर रियायत का प्रावधान किया गया है। दिव्यांगों द्वारा गठित स्वयं सहायता समूहों को विशेष प्रोत्साहन के साथ-साथ वित्तीय सहायता उदारतापूर्वक दिया जाता है।

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम- 2016 की धारा 100 के अंतर्गत हरेक संस्थान दिव्यांगजनों के लिए समान अवसर नीति का प्रकाशन करेगा। दिव्यांगता के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव करना कानूनन अपराध है, जिसकी शिकायत मुख्य आयुक्त या राज्य आयुक्त के समक्ष की जा सकती है। दिव्यांगजन को अनुसंधान का विषय नहीं समझा जा सकता है। ऐसे बच्चों को विद्यालयों में प्रवेश, शिक्षा संबंधित सभी मामलों और अधिनियम की धारा 16 और 31 के संबंध में आवश्यक कार्रवाई सुनिश्चित करने के लिए जिला शिक्षा कार्यालय में एक नोडल अधिकारी नियुक्त किया जाना आवश्यक है।

समाज के महत्त्वपूर्ण अंग और अन्य प्रकार से बेहद सक्षम होने के बावजूद दिव्यांग लोग उपेक्षाओं के शिकार होते रहे हैं। इसके बावजूद कई ऐसी शख्सियतों ने कठोर चुनौतियों का सामना करते हुए, दृढ़ इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास के दम पर विभिन्न क्षेत्रों में बुलंदियों को छुआ है और साबित कर दिया है कि दिव्यांगता किसी को मंजिल हासिल करने से नहीं रोक सकती है। समाज भी अब उनके संघर्षमय प्रयास, महत्त्वपूर्ण योगदान और सामाजिक महत्त्व को स्वीकारने लगा है। आधुनिक वैज्ञानिक शोधों और अनुसंधानों, उन्नत तकनीकी और चिकित्सा पद्धति की सहायता से दिव्यांगता के प्रभावों को कम किया जा रहा है। दिव्यांगों की सामाजिक समानता और सम्मान के लिए सामाजिक की सोच में सकारात्मक परिवर्तन आवश्यक है, ताकि उन्हें उपेक्षा की बजाय समाज में सम्मानजनक स्थिति प्राप्त हो सके।

आभासी दुनिया में

शरद सिंह

एक परिचित मेरे घर से दुनिया के दूसरे छोर यानी सिएटल में रहती हैं। उनकी उम्र सत्तर साल के पार है। मगर उम्र के अनुपात में वे आज भी चुस्त-दुरुस्त हैं। चेहरे पर उतर आई झांइयों और ढीली पड़ती चमड़ी को अनदेखा कर दिया जाए तो वे आज भी ठीक वैसी ही दिखाई देती हैं जैसे तीस साल पहले दिखती थीं। उनकी वही छवि ही मेरी आंखों की थाती थी। भागते-दौड़ते समय में कई बार उनकी याद आई, उसी छवि के साथ। झुंझलाहट होती कि अब तो वे दैहिक रूप से बदल चुकी होंगी। शायद मोटी हो गई हों, थुलथुल या बेहद पतली, कौन जाने। पक्का था कि फिर देखूंगी तो पहचान नहीं सकूंगी उन्हें। अक्सर यही होता है। बिछड़े हुए जब कई साल बाद मिलते हैं तो उनका आकार-प्रकार सब कुछ बदल चुका होता है। मैं उन्हें 'मौसी' कहती थी। उनके इंदौर जाने तक तो आशा थी कि कभी न कभी उनसे मिलना हो ही जाएगा। फिर पता चला कि उनके पति को यानी मौसा को सिएटल के किसी कॉलेज में अतिथि शिक्षक के रूप में बुला लिया गया है और वे सपरिवार अमेरिका चले गए हैं। सिएटल उन्हें रास आ गया। उनके कई रिश्तेदार भी वहीं थे। कुछ समय बाद अचानक मौसा चल बसे। पर मौसी वहीं बस गईं। बेटे ने वहीं अपनी पढ़ाई पूरी की और वहीं नौकरी, शादी करके हमेशा के लिए सिएटलवासी हो गया। ये सारी बातें मुझे मौसी से ही पता चलीं।

हुआ यों कि एक दिन अचानक फेसबुक पर मौसी की 'रिक्वेस्ट' देख कर मैं चकित रह गई। दिल एकबारगी तेजी से धड़का और मैं अनुमान लगाने लगी कि प्रोफाइल में जो फोटो दिख रही है, वह कितनी पुरानी है! उस तस्वीर में मौसी की काफी पहले वाली ही छवि कौंध रही थी। उनकी फेसबुक वाल पर जाकर उनकी कुछ ताजा तस्वीरें देखीं तो समझ में आ गया कि वे मात्र उतनी ही बदली हैं जितनी कि उम्र ने उन्हें बदला है। वह भी बड़ी कोमलता से। उनका सिकुड़ा हुआ चेहरा अभी भी वही भाव-भंगिमा दिखा रहा था। कैलेंडर ने मानो एक झटके में कई सारे पन्ने पलट दिए और मुझे उसी रात्रिभोज वाले समय में पहुंचा दिया। एक पल की देर नहीं लगाई मैंने उनकी 'रिक्वेस्ट' स्वीकार करने में।

दुनिया मेरे आगे

इस बीच किसी समय मौसी ने मेरी एक पोस्ट को पहली बार 'लाइक' करते हुए लिखा-'हेलो, कैसी हो?' फिर उनकी अगली टिप्पणी थी-'मुझे पहचाना? मैं तुम्हारी शांता मौसी।' वहीं से हमारे बीच संवाद का सिलसिला चल पड़ा। लेकिन इसके बाद के सारे संवाद 'वॉल' से हट कर 'इनबॉक्स' में होने लगे। हमने एक-दूसरे से अपनी अब तक की जिंदगी की कई बातें साझा कीं। उन्होंने मेरा मोबाइल नंबर मांगा। इसके बाद एक सुबह अचानक उनका फोन आया मेरे मोबाइल पर- 'मैं बोल रही हूं, तुम्हारी शांता मौसी।' वही खनकती-सी आवाज। उम्र की थकन अगर आवाज में न झलकती तो कुछ भी नहीं बदला था स्वरों के उतार-चढ़ाव में।' मैंने पूछा- 'ओह, आप इंडिया कब आईं?'

'नहीं मैं भारत में नहीं हूं, सिएटल में ही हूं।' उनकी इस बात ने मुझे झेंपने पर विवश कर दिया। मैंने उनसे 'इंडिया' कहा था और उन्होंने उत्तर देते हुए 'भारत' कहा। उस पर यह मेरे लिए हर्ष मिश्रित आश्चर्य का विषय था कि वे सिएटल से मुझसे बात कर रही थीं। शायद भारत में रहने वाले उनके रिश्तेदारों को भी उनके द्वारा फोन किए जाने की इच्छा रहती होगी। जल्दी-जल्दी परस्पर ढेर सारी बातें कर डाली थीं हम दोनों ने। उस दौरान उनके द्वारा कही गई एक बात मेरे मन को गहरे तक छीलती चली गई। उन्होंने कहा- 'मैंने भारत के बहुत-से पुराने परिचितों को अपने फेसबुक में जोड़ रखा है। उनसे मुझे अपनेपन का बोध होता है, वरना यहां तो पराएपन की गंध जाती ही नहीं है। सच, दम घुटता है।'

बाद में देर तक मैं अपने मन को खंगालती रही कि मैं भी क्या उन्हें वह अपनापन दे पा रही हूं जो वे सात समंदर पार से यहां ढूंढ़ रही हैं? न जाने क्यों मुझे याद आ गई टॉम हैंक्स और मेग रायन की प्रसिद्ध फिल्म 'स्लीपलेस इन सिएटल'। हॉलीवुड की 1993 की इस फिल्म में एक विधुर पिता को उसका आठ वर्षीय बेटा एक रेडियो टॉक शो में जाने के लिए प्रेरित करता है, ताकि उसका पिता अपने लिए एक नया जीवन-साथी ढूंढ़ सके। यह कहानी याद आते ही मुझे लगा कि वह सिएटल कहीं भी हो सकता है, अमेरिका ही नहीं, भारत के छोटे-से गांव-कस्बे में भी, जहां एकाकी लोग प्रेम भरे अपनेपन के लिए सोशल मीडिया का मुंह जोहते रहते हैं। सच कहूं तो यह सच मैंने उसी दिन जाना कि सिएटल ही नहीं, बल्कि पूरी वह दुनिया अनिद्रा की शिकार है जो आंखें फाड़-फाड़ कर आभासी दुनिया में अपने लिए मुट्ठी भर प्रेम तलाश रही है। उस आभासी दुनिया में जहां सच और झूठ में अंतर करना बेहद कठिन है।

नवाचार की दरकार

हाल ही में शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत 'प्रथम' नामक एक स्वयंसेवी संगठन ने शौक्षिक स्थिति पर वार्षिक रिपोर्ट जारी की है। 'असर' नामक इस रिपोर्ट में इस बार 596 जिलों के 5.46 लाख बच्चों को अपने सर्वेक्षण में शामिल किया है जो पिछले वर्षों की तुलना में कहीं ज्यादा है। इस वर्ष की रिपोर्ट के अनुसार, शिक्षा के अधिकार को लागू करने के बाद भारत में शिक्षा की गुणवत्ता में पहली बार सुधार हुआ है, जो इस रिपोर्ट के आंशिक रूप से आंकड़ों में हुए सकारात्मक बदलाव से स्पष्ट होता है। आंकड़ों पर गौर करें तो पाते हैं कि 2012 में कक्षा पांच के 46.9 फीसद विद्यार्थी कक्षा दो की पाठ्यपुस्तक पढ़ सकते थे, उनका प्रतिशत बढ़कर 2018 में 50.5 हो गया। लेकिन इसे सापेक्षिक सुधार करते हैं न कि अपेक्षित सुधार।

शिक्षा की इस बदहाली का परिणाम है कि कुछ नामचीन राज्यों की बोर्ड परीक्षाओं में वरीयता प्राप्त विद्यार्थियों के बारे में खुलासा होता है कि उन्हें अपनी कक्षा के सामान्य प्रश्नों के जवाब भी नहीं मालूम। लेकिन उस समय ठीकरा फोड़ते हैं पेपर चोरी या लीक कराने वाले गिरोह पर; साथ ही चंद पैसों में अपने राज्य का भविष्य बेचने वाले शिक्षा विभाग के अधिकारियों पर, जिनकी मिलीभगत से यह कुकृत्य संपन्न होता है। नेपथ्य में जाने पर पता लगता है कि इनकी शैक्षणिक नींव ही इतनी मजबूत नहीं है कि अपने बूते शीर्ष स्थान प्राप्त कर सकें। ऐसी रिपोर्ट्स के जरिए बेबाक तौर पर कह सकते हैं कि केवल कानून बना कर या योजनाओं को लागू कर देने मात्र से अपेक्षित सुधार की उम्मीद नहीं की जा सकती; शिक्षा में नवाचारी तरीकों को अपनाना ही होगा। साथ ही प्रभावी शोध और अनुसंधान को प्राथमिकता देनी होगी। बाजारीकरण का दंश झेल रही वर्तमान शिक्षा प्रणाली के गिरते स्तर के कारण गुणवत्ता पर प्रश्न उठना लाजमी है लेकिन इस मुद्दे पर बहस करने को जिम्मेदार लोग तैयार ही नहीं हैं।

छियासीवें संविधान संशोधन के जरिए छह से चौदह वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा देना एक बेहतर कदम था, क्योंकि प्राथमिक शिक्षा एक अनिवार्य मूलभूत अधिकार है। इसके अंतर्गत सर्वशिक्षा अभियान चलाया गया जिसकी आशानुरूप सफलता विद्यालयों में केवल नामांकन बढ़ने तक सीमित रही। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने में कोई भी सरकारी प्रयास कारगर साबित नहीं हो पाए हैं। विभिन्न राज्य सरकारों व केंद्र सरकार सहित अनेक संस्थानों द्वारा विद्यार्थियों के लिए कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इस साल नववर्ष के मौके पर छात्रों में वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने की पहल करते हुए इसरो ने विद्यार्थियों के साथ संवाद कार्यक्रम शुरू किया। यह कदम सराहनीय है लेकिन ऐसे ही नवाचारी कदम हमें प्रारंभिक शिक्षा में सुधार के लिए उठाने होंगे ताकि नींव को मजबूत किया जा सके।

● *चिमन भवानी सिंह, बाड़मेर, राजस्थान*

शैक्षिक बुनियाद

देश में शिक्षा का अधिकार कानून और सर्वशिक्षा अभियान जैसी योजनाएं लागू होने के बाद भी प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता नहीं सुधरी है। एक रिपोर्ट के अनुसार देश भर में आठवीं कक्षा के 28 फीसद छात्र ऐसे हैं जो कक्षा दो का पाठ तक नहीं पढ़ पाते हैं। देश में बेटियों की पढ़ाई को लेकर जागरूकता बढ़ी है, पर मध्यप्रदेश में स्कूल न जाने वाली लड़कियों की तादाद में वृद्धि हुई है। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार देश में आधे से अधिक बच्चे गणित विषय में बेहद कमजोर हैं। चार में से एक बच्चा एक वाक्य तक नहीं पढ़ सकता। चौंकाने वाली बात यह है कि शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के आठ साल बाद भी सरकारी स्कूलों में पेशेवर शिक्षकों की भारी कमी है। नतीजतन, आज प्राथमिक शिक्षा भयंकर अव्यवस्था की शिकार है। जरूरत इस बात की है कि प्राथमिक शिक्षा को सशक्त बनाया जाए ताकि बच्चों की शैक्षिक बुनियाद मजबूत हो सके।

● *चांद मोहम्मद, आंबेडकर कॉलेज, दिल्ली*

मानक तबादला नीति

सरकार के विभिन्न विभागों में कार्यरत कर्मचारियों-अधिकारियों के असामयिक और मनमाने तबादलों के समाचार अक्सर आते रहते हैं। शासन-प्रशासन के सुचारु संचालन के लिए विभिन्न स्तरों पर कर्मचारियों की तैनाती की जाती है। तबादले के बाद नई जगह पहुंचे अधिकारी-कर्मचारी को वहां की भौगोलिक व सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप ढलना होता है लेकिन देखा गया है कि जैसे ही वह स्थानीय हालात को समझ कर पूरी गति से कार्य करना शुरू करता है, उसके लिए फिर नई जगह जाने का फरमान आ जाता है। नियमित विभागीय फेरबदल और तबादलों के अलावा भी बहुत से ऐसे कारण होते हैं जिनके चलते सरकारी कर्मचारी को एक स्थान पर ज्यादा समय बिताने का अवसर नहीं मिल पाता। ऐसे कारणों में कर्मचारी की ईमानदार कार्यशैली, जो किसी स्थानीय नेता पसंद न आ रही हो, प्रमुख है। यह शासकीय सेवक के मनोबल को तोड़ने वाला होता है।

एक स्थान पर बिना पर्याप्त या निर्धारित समय व्यतीत किए अचानक तबादले से कर्मचारी के साथ-साथ उसका पूरा परिवार प्रभावित होता है। बच्चों की पढ़ाई से लेकर अचानक स्थान परिवर्तन के कारण स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों से भी जूझना पड़ता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पूरे देश के लिए एक मानक तबादला नीति बनाए जाने की जरूरत है। बड़े राज्यों में प्रदेश स्तर हुए तबादले में भी एक भौगोलिक, सामाजिक व भाषाई विशिष्टता वाले क्षेत्र से शासकीय सेवक को दूसरे भौगोलिक, सामाजिक व भाषाई विशिष्टता वाले क्षेत्र में जाना होता है। यदि उसे नए क्षेत्र में कार्य करने लिए पर्याप्त समय दिया जाए तो वह स्थानीय समस्याओं को ज्यादा बेहतर तरीके से समझ कर उनका निदान कर सकेगा। तबादलों को राजनीतिक दबाव से सर्वथा दूर रखने की भी जरूरत है।

● *ऋषभ देव पांडेय, सूरजपुर, छत्तीसगढ़*

अंगदान से जीवनदान

आज हमारे देश में लाखों लोग केवल इसलिए अपना जीवन नहीं बचा पाते कि उन्हें समय पर अंगदान नहीं मिल पाता। समाज में फैले अंधविश्वास, रूढ़ियों और शिक्षा के अभाव में लोग अंगदान करने से कतराते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में केवल 0.01 प्रतिशत लोग अंगदान करते हैं जबकि पश्चिमी देशों में यह आंकड़ा 70 से 80 प्रतिशत है। अंगदान न करने के पीछे एक बड़ा कारण लोगों की यह आशंका भी है कि कहीं डॉक्टर दान किए गए अंग को किसी जरूरतमंद को न देकर कारोबार न खोल दें! लेकिन अब बढ़ती पारदर्शिता के कारण हम अंगदान की संपूर्ण जानकारी ले सकते हैं। आज अंगदान से हर साल पांच लाख लोगों की जान बचाई जा सकती है। लिहाजा, जरूरत है केवल जागरूकता की ताकि लोग अंधविश्वासों को दूर कर अंगदान के लिए प्रेरित हों।

● *श्रीनिवास पंवार बिश्नोई, नोखा, राजस्थान*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com